विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५५/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)-16/85

वर्ष १५ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२९ • श्रावण पूर्णिमा [शक] • दि. ३१-७-१९८५ • अंक २

सही दर्शन

वंदना

(१)

दर्शन, भक्ति पूजन, वंदन, अभिवादन आदि सभी दो प्रकार के होते हैं — आमिष और निरामिष।

आमिष वह जो हमें भवचक्रमें बांधे रखे और निरामिष वह जो भवचक्रसे छुटकारा दिलाए। विपश्यी साधक जब सतिपट्ठानके शिविरमें भाग लेता है तो वेदनानुपश्यनाके भेद समझते हुए इन दोनों शब्दोंसे उसका संपर्क होता है। सुखद, दुखद अथवा असुखद, अदुखद। संवेदनाएँ जब राग-द्वेष-मोह पैदा करती हुई लोक-चक्र-प्रवर्तन करती हैं तो सामिष कहलाती हैं और वही संवेदनाएँ अनित्यबोध के आधारपर जब राग-द्वेष और मोह-विहीन बने रहनेमें सहायक होती हैं और धर्म-चक्र प्रवर्तन करती हैं तो निरामिष कहलाती हैं। संवेदनाएँ तो वही हैं परंतु हम उनका प्रयोग जिस प्रकार करें उसीके अनुसार वह सामिष या निरामिष होती हैं। यानी बंधनका कारण बनती हैं या मुक्तिका उपाय बनती हैं। यही नियम दर्शन, भक्ति, पूजन, वंदन, अभिवादन आदि पर भी लागू होता है।

भक्ति के क्षेत्रमें भगवानके दर्शन को बड़ा महत्व दिया जाता है। एक मान्यता चली आ रही है कि भगवानके दर्शन हो जाँय तो भक्त मुक्त हो जाय। यह मान्यता बिल्कुल सही भी है और सर्वथा गलत भी। दर्शन निरामिष हो तो भक्त अवश्य मुक्त हो जायेगा। निरामिष आमुख हो तो भी मुक्तिआमुख हो जाएगा। परंतु सामिष हो तो मुक्तिसे दूर, बल्कि भव-बंधनोंमें ही बंधता जाएगा।

जब कोई व्यक्ति भगवानके साकार शरीर का दर्शन करता है और उसकी रूपमाधुरी पर मोहित होता है तो दर्शन सामिष होता है। जब शरीरका दर्शन कर भगवानके गुणोंको याद करता है और वैसे गुण स्वयं धारण करनेकी प्रेरणा प्राप्त करता है तो निरामिष आमुख हो जाता है यानी मुक्ति की ओर बढ़नेका कदम उठाता है। परंतु जब कोई व्यक्ति साधनाके बल पर भगवानकी धर्म-तरंगोंके अनुरूप स्वयं भी धर्मतरंगें उत्पन्न करके उनसे समरस हो जाता है तो वह निरामिष दर्शन होता है। भक्त भवबंधनसे मुक्त हो जाता है क्योंकि ऐसा करते हुए अपने सारे भव संस्कार निर्जरित कर लेता है।

भगवानके जीवनकालकी कुछ एक घटनाओंसे इसे स्पष्टतया समझें।

आदमी अपने पूर्व कर्मों के अनुसार खूबसूरत या बदसूरत शरीर प्राप्त करता है। पूर्व कर्म पुण्यमय हों तो खूबसूरत माता-पिताके संसर्ग में आता है और गर्भावस्था अथवा जन्मके समय विघ्न-विमुक्त होकर सर्वांग सुन्दर देह पाता है। बोधिसत्व सिद्धार्थ गौतम अनगिनित जन्मोंमें असीम पुण्य-पारमिताओंका संचय लेकर जन्मा तो अत्यंत सुन्दर देहधारी हुआ। अत्यंत आकर्षक बड़ी बड़ी नीली आँखें, मनमोहक धनुषाकार भौंहें, भौंहोंके बीचमें श्वेत कोमल कपास सी रोम-राशि, लंबी नाक, पतले गुलाबी होठ, शुभ्र श्वेत सुगठित दन्तावली, लंबी जिह्वा, सिंह की सी ठोड़ी, सिंहकी सी कटि, काले चिकने मुलायम केश, सीधे खडे होने पर घुटनोंको छू जानेवाले लंबे आजानु बाहु, लंबी पतली खूबसूरत अँगुलियाँ, उन्नत भव्य ललाट, मृगकी सी पिंडलियाँ और तपे स्वर्ण सी चमकीली त्वचा। सब मिलाकर ऐसा नयनाभिराम व्यक्तित्व जो किसीको भी हठात् अपनी ओर खैंच ले।

ऐसे मनोमुग्धकारी रूप-माधुर्यका धनी राजकुमार सिद्धार्थ सारथी छन्द के रथ पर सवार होकर नगर भ्रमणकर राज-उद्यानमें लौटा। सेवकों ने उसे स्नान करवाकर बहुत सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे

धम्म वाणी

परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥

थेरी अपदान–७/१२१

मैंने भगवान बुद्ध का शासन पूरा किया यानी उनकी सम्पूर्ण शिक्षा का पालन कर लिया, अपने शास्ता (शिक्षक) को पहचान लिया, सिर का भारी बोझ उतार लिया और भव-बंधन से मुक्त हो गई।

सजाया। यह उसके जीवनकी आखिरी शरीर-सजावट थी। वह रथ पर सवार हो राजपथ से गुजरता हुआ अपने महलोंकी ओर चला। राजमार्ग पर एक बड़ी हवेली के बरामदेमें खड़ी युवती किसा गौतमी (चुटकी भर सरसोंवाली नहीं) खड़ी थी। राजकुमार की रूपश्री देखकर वह विमुग्ध हो उठी और इस मुग्ध अवस्थामें उसने यह गीत गाया--

निब्बुता नून सा माता, निब्बुतो नून सो पिता।
निब्बुता नून सा नारी, यस्सायं-ईदिस्सो पती ति॥

उस माताकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चित्त शांत हुआ, उस पिताकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चित्त शांत हुआ जिसे ऐसा पुत्र प्राप्त हुआ। उस पत्नीकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चित्त शांत हुआ जिसे ऐसा पति मिला।

कुमारी किसा गौतमी राजकुमार सिद्धार्थ के भौतिक शरीरकी रूप-माधुरीका रसपान कर मुग्ध हुई। परन्तु राजकुमार उसी दिन वृद्ध, रुग्ण, मृत और परिव्राजकको देखकर संसारके प्रति सर्वथा निर्वेदके भावसे भरा हुआ था। उसने "निब्बुता" शब्द सुना तो कानों में धर्म-गंभीर "निर्वाण" शब्दकी वीणा झंकृत हो उठी। सारा तन मन झनझना उठा। मानस में बिजली सी कौंधी। "निब्बुता" तो वही होगा जिसके भीतर राग, द्वेष, मोहकी अग्नि पूर्णतया बुझ जाये। यह कुमारी मुझे निर्वाण प्राप्त करनेके लिए प्रोत्साहित कर रही है। मुक्तिके मार्ग पर उत्तेजित करनेवाली मानो यह मेरी आचार्या है। कृतज्ञता-विभोर राजकुमार ने अपने गले में पहना हुआ मोतियोंका बहुमूल्य हार गुरु-दक्षिणाके रूपमें किसा गोतमीको भेजा; यह समझता हुआ कि यह शरीर जीर्ण होनेवाला है। समय रहते इसका सही उपयोग कर राग, द्वेष, मोह-मुक्त होकर, निर्वाण अवस्थाका साक्षात्कार कर लूँ और जीवन सफल बना लूँ। उसी रात परम सत्यकी खोजमें सिद्धार्थ राजकुमारने घर त्यागा। अनोमा नदी पार करके बेहद खूबसूरत केशराशि काट फेंकी। वेशकीमती वस्त्राभूषण उतारकर भिक्षुके गेरुए वस्त्र धारण कर लिए और मुक्तिकी खोजमें आगे बढ़ चला। इस ओर वह किसा गोतमी राजकुमारका भेजा हुआ बहुमूल्य हार पाकर यह समझ बैठी कि कुमारने मेरा प्रणय-निवेदन स्वीकार किया है और उपहार स्वरूप यह हार भेजा है। उसने "योनिसोमनसिकार" चिंतन ही नहीं किया। यानी ठीक दिशामें चिंतनही नहीं किया। निरामिष दर्शन तो बहुत दूरकी बात हुई। रूप-माधुरीका सामिष दर्शन करके उस कामातुरी कामिनीके अंग-अंगमें वासनाकी सिहरन फूट पड़ी। उसे इस दर्शनसे क्या मिला भला? भवबंधन बांधनेवाला मुक्ताहार ही मिला, बंधन-मुक्ति नहीं।

◉ ◉ ◉

एक और घटना

युवा योगी सिद्धार्थ गौतमने छह वर्षोंतक विभिन्न प्रकारकी साधनाएँ आजमाई। असीम कायाकष्टका मार्ग भी अपनाकर देखा। पर उनसे उसे भव-मुक्ति प्राप्त न हुई। तो स्वयं अपने प्रयत्नोंसे मुक्तिदायिनी विपश्यना साधना ढूंढ निकाली। इसीके अभ्यास द्वारा निरंजरा नदीके तीर पर बोधिवृक्षके तले परम सत्य निर्वाणका साक्षात्कार कर लिया। सम्यक् संबोधि प्राप्त कर ली। जन्म जन्म के भवबंधनोंसे मुक्त हो गया। इस निर्वाणिक सुखकी अवस्था में बोधिवृक्षके तले और उसके आस-पास सात सप्ताह बिताकर उसने यह कल्याणकारी विद्या भव-संतापित जगतको बांटनेका निर्णय किया। अपने पांच पुराने साथियोंको यह रतन बांटनेके लिये ऋषिपत्तन, वाराणसीकी ओर चल पड़ा।

जब वह शरीरको दंड देनेवाली निरर्थक साधनामें लगा था तो उसका शरीर कृशकाय हो गया था। स्वर्णवर्णी त्वचा दुःवर्ण हो गयी थी। चेहरेकी आभा बिल्कुल नष्ट हो गयी थी। परंतु मध्यम मार्ग अपनाकर विपश्यना साधना करने लगा तो शरीर की शोभा पुनः लौट आयी। सम्यक् संबोधि प्राप्त होने पर तो यह शोभा कई गुना बढ़ गयी। केवल चेहरे से ही नहीं, बल्कि अंग अंग से अलौकिक अपूर्व कांतिप्रभा स्फुटित हो उठी। ऋषिपत्तनकी ओर यात्रा करते हुए मार्गमें उन्हें उपक नामका एक नग्न आजीवक संन्यासी मिला। उसने भगवानके चेहरे की कांति और शांति देखी तो बहुत प्रभावित हुआ। उनकी ओर आकर्षित हुआ और कौतूहलतावश पूछ बैठा,"

"श्रमण! तुम्हारे नयन-मुख बहुत शांत और प्रभापूर्ण हैं। तुम्हें क्या प्राप्त हो गया है? तुम्हारा आचार्य कौन है?

भगवानने कहा,— "मुझे सम्यक् सम्बोधि प्राप्त हुई है। मैं स्वयं अपना आचार्य हूँ।"

उपकने फिर उत्सुकतावश पूछा, "तो क्या तुम अर्हत हो गए हो? अनंत जिन हो गए हो?"

भगवानने सहजभावसे स्वीकृति दी— "हाँ, भाई! मैं अर्हत हो गया हूँ। अनंत जिन हो गया हूँ।"

उपकको लगा कि आजके युगमें कोई अनंत जिन कैसे हो सकता है? वह अविश्वाससे भरा मुँह बिचकाकर बोला, "होगा" और उपेक्षाके भावसे एक ओर चल दिया।

आजीवक उपक ने उस समय भगवान बुद्धका दर्शन तो किया पर यह दर्शन निरामिष नहीं था। इसलिए जो लाभ मिलना चाहिए था वह नहीं मिला।

आगे चलकर उपक मार्गभ्रष्ट हुआ। परिव्राजक जीवन त्यागकर एक शिकारीकी सुन्दरी पुत्री चम्पाके प्रेम-पाशमें फंस गया और उससे विवाह कर लिया। स्वयं भी शिकारीका घृणित जीवन जीने लगा। समय पाकर उसे एक पुत्र भी हुआ। परंतु पत्नी चम्पा परिव्राजकका जीवन छोड़नेवाले पतिको बराबर ताने मारा करती थी। उसके कटु वचनोंसे आहत होकर वह एक दिन घर छोड़कर निकल पड़ा। वर्षों पूर्व जिन अनंत जिनको मिला था अब उन्हीं की शरण गया और उनसे विपश्यना साधना सीखी। भगवानका दर्शन निरामिष होता है, विपश्यनाके आधारपर धर्मरंगोंके स्तर पर होता है तो ही सार्थक होता है। उपक शीघ्र ही अनागामी अवस्था पाकर कालांतर में अर्हत हुआ। साकार भौतिक शरीरका दर्शन उपकको पहले भी हुआ था। पर मुक्ति तो निराकार आध्यात्मिक दर्शन से ही हुई।

एक और घटना।

धर्मचक्र-प्रवर्तन करने के लिए और अपने बिछुड़े हुए पांचों साथियोंको करुणचित्तसे शुद्ध धर्मरत्न बांटने के लिए भगवान ऋषिपत्तन पहुँचे। पांचोंने उन्हें दूरसे आता हुआ देखा और देखा कि उनका शरीर पहले जैसा कृशकाय नहीं है। अस्थि-पिंजर नहीं है। अस्थियोंके कील-कांटे शरीर पर नहीं उभर रहे तो उन्होंने समझा कि यह साधना-च्युत गोतम हमारे पास आ रहा है। राजकुलमें जन्मा है अतः आनेपर बैठने के लिए आसन तो देना होगा, परंतु इसका अन्य कोई मान-सन्मान, आदर-सत्कार, नहीं करेंगे। उन दिनों भारतमें एक बहुत बड़ा समुदाय ऐसी मान्यता माननेवाला था कि देह-दंडनसे ही मुक्ति प्राप्त होती है। और इन पांच साथियों ने देखा कि यह देह-दंडनका तप छोड़ चुका है। अतः मुक्तिका अधिकारी नहीं है। इस मिथ्या धारणासे यह पांचों प्रभावित थे। परंतु असीम करुणा और मैत्रीकी किरणें विकीर्ण करते हुए भगवान बुद्ध जैसे जैसे समीप आते गए, वैसे वैसे यह पांचों अधिकाधिक प्रभावित होते गए। वे अपने पूर्व निर्णयोंको भूल गए और उनके सम्मान-सत्कारमें लग गए। बहुत आदर और श्रद्धापूर्वक उनका उपदेश सुना। देह-मंडन और देह-दंडनकी अतियोंके बीचकी मध्यमा प्रतिपदाका अभ्यास करके देखा और पहले दिनके प्रशिक्षण से ही कोंडियंय स्रोतापन्न अवस्थाको प्राप्त हुआ। दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवे दिन भगवानने तप्प, भद्दिय, महानाम और अश्वजितके साथ बैठ बैठकर उन्हें विपश्यना साधना करवायी और एक एक करके वे भी स्रोतापन्न अवस्था को प्राप्त हुए। छठें दिन भगवानने पांचोंको विपश्यनाका आगेका पाठ सिखाया और पांचों अर्हत अवस्थाको प्राप्त हुए।

उनके लिए भगवानका प्रथम दर्शन निरामिष नहीं बना। परंतु ज्यों ज्यों निरामिष बनता गया त्यों त्यों पांचों के पांचों विशुद्धि के मार्ग पर आगे बढते. हुए इसी जीवनमें मुक्त हो गए।

● ●

एक और घटना।

गृह त्यागनेके ७ वर्ष बाद भगवान कपिलवस्तु लौटे। सारा नगर अपने पूर्वकाल के राजकुमारके दर्शनके लिए उमड़ पड़ा। कुमार राहुल भी अपने पिताके दर्शन के लिए उत्सुक था। सिद्धार्थ ने जब घर छोड़ा था तो शिशु राहुल पूरे एक दिनका भी नहीं हुआ था। महल के छज्जे पर खड़ी माता यशोधरा पुत्र राहुलको उसके पिताकी पहचान करवाती है। यह जो भिक्षु संघके साथ आगे बढ़ते चले आ रहे हैं... उनका रूप ऐसा है जैसे कि नील पथ पर तारागण से घिरे चंद्रमाका होता है।

गच्छति नीलपथे विय चन्दो।
तारागण परिवेट्ठित रूपो।
सावक मज्झ गतो समणिन्दो।
एसहि तुय्ह पिता नरवीहो॥

यह जो नरेन्द्र सिंह सदृश हैं यह तेरे पिता हैं। ७ वर्ष के बालकको साकार शरीर की रूपश्रीके स्तर पर ही तो पहचान करवाई जा सकती थी।

"अंजन वर्ण सुनील केश हैं जिनके, कंचनपट्टकी तरह दीप्त शुद्ध ललाट है जिनका, सिंह हनु, सुगठित गर्दन, सुन्दर नासिका, इन्द्रधनुष सदृश नीली भौंहें हैं जिनकी। पूर्णिमा के चांद जैसी मुख-छटा है जिनकी। उत्तम वर्ण, कंचन छविवाला शरीर है जिनका। ऐसे यह नरेन्द्र सिंह तेरे पिता हैं।"

शरीर-श्री का यह शोभा-वर्णन आध्यात्म-दर्शन नहीं करा सकता। असंख्य पूर्व जन्मों में यशोधरा भगवानकी जीवनसंगिनी रह चुकी थी। उनके साथ साथ पुण्य-पारमिताओंका संचय-संग्रह किया था। ऐसी धर्म विहारिणी द्वारा बुद्धका केवल सामिष वर्णन उचित नहीं था। अतः पुत्र को समझाते हुए उनके आध्यात्म गुणोंकी ओर भी संकेत करती है।

"सील समाधि पतिट्ठित चित्तो।
लोक हिताय गतो नरवीरो। ..."

आदि आदि। कुमार राहुलके पास भी अनेक जन्मोंकी पुण्य-पारमिताओंका विपुल संग्रह था। अतः पहली बार जब पिताके समीप जाता है तो उनके शारीरिक रूप सौंदर्य से प्रभावित नहीं होता, बल्कि उनके आध्यात्मिक सौंदर्यकी ओर आकर्षित होता है। और इसीलिए कहता है–

"समण! तुम्हारी छाया बहुत शीतल है, सुखद है।"

और यह शीतल, सुखद छाया उसे शरण देती है। अपने अंकमें भर लेती है। वह अपने पितासे अपना दायाद (उत्तराधिकार) यानी विरासत मांगता है। धर्मराजके पास शुद्ध धर्मके सिवाय विरासतमें देनेको और क्या था भला? वे उसे भिक्षु संघमें सम्मिलित कर लेते हैं। बालक राहुल धर्मसेनापति सारिपुत्र और महामोग्गलायनकी देख-रेखमें धर्मपथ पर आगे बढ़ाता है। किशोर और युवावस्था पर पहुँचते–पहुँचते भगवानका निरामिष दर्शन करने लगता है। विपश्यनाकी सीढ़ियों पर चढ़कर वह अर्हत अवस्था प्राप्त कर लेता है। जीवन सार्थक कर लेता है।

माताके द्वारा पिताका दर्शन कराया गया, उससे वास्तविक परिचय नहीं हुआ। परंतु जब विपश्यना साधना द्वारा धर्म-दर्शन किया तो सचमुच पहचान लिया अपने पिता को। ठीक वैसे ही जैसे कि दादी महाप्रजापति गोतमीने अपने पुत्रको पहचाना—

'परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।"

बुद्धका शासन पूरा करके यानी बुद्धकी बतायी हुई साधना पूरी करके मैंने अपने शास्ता को पहचान लिया।"

(क्रमशः)

विपश्यना विशोधन विन्यास

'विपश्यना विशोधन विन्यास' का गठन विशेषरूपसे विपश्यना साधना संबंधी साहित्य के प्रचार-प्रसार हेतु ही किया गया है। इसके पहले यह काम 'सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट' द्वारा हुआ करता था। परंतु ट्रस्टका उद्देश्य मुख्यरूपसे साधनाके व्यावहारिक पक्षको उजागर करना है। उसके द्वारा व्यावसायिक काम किया जाना उचित नहीं। जब कि साहित्यकी मांग सभी क्षेत्रोंसे उठने

लगी तो पू. गुरुदेवके आदेशानुसार प्रकाशन जैसे व्यावसायिक कामोंके लिए उक्त ट्रस्टका गठन किया गया। इसका उद्देश्य बिना किसी मुनाफेके उचित मूल्य पर साहित्य उपलब्ध करानेका ही रहेगा। यदि कभी कुछ मुनाफा हुआ भी तो वह धर्म के प्रचारमें ही लगेगा।

फिलहाल विन्यासने निम्न पुस्तकोंका प्रकाशन आरंभ कर दिया है जो कि शीघ्र ही छपकर तैयार हो रही हैं।

१) हिंदी "धर्म ज्योति" द्वितीय संस्करण
२) हिंदी "धर्म जीवन जीने की कला" चतुर्थ मुद्रण
३) गुजराती "धर्म जीवन जीववानी कला" द्वितीय संस्करण
४) अंग्रेजी "Vipassana Journal" द्वितीय संस्करण
५) अंग्रेजी "Summary of Discourses" प्रथम संस्करण
६) हिन्दी "प्रवचन-प्रवाह" प्रथम संस्करण

इनके अतिरिक्त विन्यास विपश्यना संबंधी अन्य उपलब्ध पुस्तकोंकी बिक्री का काम भी करेगा। निकट भविष्यमें इसके अन्य प्रकाशनोंमें--

'हिंदी' एवं 'राजस्थानी' में अलग अलग दोहोंका संकलन होगा।

विपश्यना विशोधन विन्यास का पंजीकृत कार्यालय बम्बईमें निम्न प्रकार है --

८ मोहता भवन, आफ-डी. मोसेस रोड, वरली, बम्बई-४०००१८.

फिलहाल सारा लेखा-जोखा हैदराबादके निम्न शाखा-कार्यालयमें हो रहा है। अतः पुस्तकों के लिए इसी पते पर संपर्क करना चाहिए।

Vipassana Research Institute,
Gandhi Darshan, Exhiibtion Ground,
Mukramjahi Road, Hyderabad-500001

निम्न पते पर भी पुस्तकें प्राप्य होंगी :-

V. A. K. Spiritual Book Shop
P. O. Sri Aurovindo Ashram,
Pondicherry-605002.

★

मैसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

देख्यॉं भौतिक रूप नै, सधै न कोई काज।
दरसन हुवै अध्यात्मको, मिलै मुक्तिको राज ॥१॥
दरसन होवै सत्य को, भक्ति हुवै निसकाम।
तो भवबंधन सूं छुटै, प्रगटै मंगल धाम ॥२॥
सुन्दर सुन्दर रूप को, बहुविध करै बखान।
ई बखान सूं खुस हुवै, [illegible] नहीं भगवान ॥३॥
जो चावै मुकती हुवै, कर दरसन धरम।
सो साचै भगवान की, कर साचो पहचान ॥४॥
रूप देखकर के मिल्यो ? धरम देख सुख पाय।
धरम देखतां देखतां, सै गांठ्यां खुल जॉंय ॥५॥
भव्य रूप भगवान को, सदा सलोनो होय।
रूप देखकर पण कदे, भक्त मुक्त ना होय ॥६॥

दोहे धर्म के

रूप देखकर बावले, मैल उतर ना पाय।
रूप देखकर बावले, गांठें खुल ना पॉंय ॥१॥
धर्म देखते देखते, मैल उतरता जाय।
धर्म देखते देखते, गांठें खुलती जॉंय ॥२॥
रूप और आकार को, देखे मिले न सार।
जब दर्शन हो धर्म का, खुलें मुक्ति के द्वार ॥३॥
हो विपश्यना धर्म की, तो सब दर्शन होय।
कर दर्शन भगवान का, भक्त मुक्त ही होय ॥४॥
रूप देख मोहित हुआ, समझ न पाया धर्म।
जगा बोध जब सत्य का, तब ही समझा मर्म ॥५॥
रूप-माधुरी देखकर, मुक्त हुआ ना कोय।
परम सत्य जिसको दिखा, सहज मुक्त है सोय ॥६॥

वयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-आजीवन शुल्क रु. १००/-

"विपश्यना" 8/85

पो. र. नं. BS(M) 16/85

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

To

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)